CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA
ISSN 2231 - 2137

मरती संवेदना, गिरती मनुष्यता और साहित्य

डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र, *असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय ढाढा बुजुर्ग, हाटा, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश*

Received: 09/02/17	Edited: 15/02/17	Accepted: 24/02/17	Area: Hindi Literature

आहार, निद्रा, भय, मैथुनांच समन्यामेतद पशुभि: नाराणाम ।
धर्मो हि तेषाम अधिक: विशेष: धर्मेण हीना: पशुभि: समाना।

उपर्युक्त संस्कृत वांडमय की पंक्तियां मनुष्य और पशु के बीच आहार, निद्रा, भय, तथा संतानोत्पति को एक सामान मानती है। एक मात्र तत्व न केवल मनुष्य को पशु से विशिष्ट बनाता है वरन अससे पृथक भी करता है। यह धर्म पूजा - पाठ या कर्मकांड के रूप में किया जाने वाला धर्म नहीं है बल्कि मनुष्य का अपना विवेक है, जो अच्छे और बुरे, सदाचार और दुराचार, न्याय और अन्याय, पाप और पुण्य के बीच भेद करने की शक्ति प्रदान करता है। इस शक्ति के बल पर ही मनुष्य पशु से विशिष्ट है। हम पशु से विशिष्ट है, क्योंकि हम सोच सकते है, विचार कर सकते है। अगर हम ऐसा नहीं करते है तो हमारे और पशु में कोई भेद नहीं। **गोस्वामी तुलसीदास** ने मानव शारीर को दुर्लभ बताते हुए अनेक जन्मों के पुण्य, तप व साधना का फल माना है। मानव जीवन की सर्थाकता अपने बुध्दि विवेक को निरंतर मानवता के पथ पर अग्रसर करने में है।

आज का समय पहले से अधिक विकसित, पहले से अधिक सुशिक्षित सुसंस्कृत तथा सभ्य और वैज्ञानिक है। हमारी चेतना का दायरा पहले से अधिक विस्तृत है। दुनिया संचार के साधनों एवं तकनिकी के द्वारा निरंतर छोटी होती जा रही है। विश्व ग्राम एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था का स्वरूप उभरकर सामने आया है। बायोटेक्नोलॉजी एवं विज्ञानं के द्वारा अविश्वासनीय एवं अकल्पनीय उपलब्धियों को निरंतर अर्जित किया जा रहा है। एक प्रकार से यह तकनिकी के विकास का चरमोत्कर्ष चल रहा है, किंतु विकास के इसी दौर में हम ज्यादा असभ्य, बर्बर और अमानवीय भी हो रही है । यह गंभीर विचार का विषय है, किंतु दु:ख इस बात का है कि हमारी विचार करने की शक्ति कमजोर पडती जा रही है, जिस कारण हम बडा से बडा और जघन्य से जघन्य अपराध करने में तनिक भी संकोच नही कर रहे हैं। दिल्ली में पांच साल की एक बच्ची के साथ किया जाने वाला दुराचार हो अथवा मुंबई में एक महिला पत्रकार के साथ किया गया सामूहिक बलात्कार हो अथवा चलती बस या ट्रेन में से किसी महिला या नवजात बच्ची को उठाकर फेक देने की बात हो या कश्मीर, आसाम आदि जगहों पर आतंकी और नक्सली हमले में सामूहिक रुप से मारे गए लोगों की बात हो अब आम हो गयी है। सबसे बडी बात यह कि अब घटनाएँ आश्चर्य या विस्मय नही पैदा करती बल्कि वे रोजमर्रा का हिस्सा बनती जा रहीं है। मुक्तिबोध की एक कविता में आता है कि कहीं आग लग गयी और कहीं गोली चल गयी। आग लग जाना व गोली का चल जाना आज के समय कोई बडी बात नहीं है। यह आज के समय की अपनी विडम्बना है. जिस पर हर बुध्दिजीवी को सोचना है और उसके लिए आगे भी बढना है।

एक सवाल पैदा होता है कि क्या हम आज एकदम संवेदनहीन हो गए है? अथवा अभी भी हमरे भीतर कुछ संवेदना बची है? यह सवाल उतना आसान नहीं है जितना कि लग रहा है आज के समय में हमारी संवेदना और हमारी मनुष्यता एक गंभीर चिंतन के विषय हैं। ऐसा भी नहीं है कि पहले का समाज एकदम सभ्य और संवेदनशील था। ऐसा हम नहीं कह सकते, क्योंकि अगर ऐसा होता तो गोस्वामी तुलसीदास अकबर के सुशासन के दौर में यह नहीं कहते-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख
चाकर को चाकरी, जीविका विहीन लोग
साद्यमान सोच बस कहैं एक एकन सों
काहाँ जाई का करी?

यही नहीं, तुलसीदास, यह भी कहते है

अगि बडवागी ते बडी है आगि पेटन की

पहले भी संवेदनहीनता और अमानवीयता थी, किंतु हैवानियत की जो पराकाष्ठा तथा उसमा जैसा नंगा नाच आज देखने को मिल रहा है वैसा पहले नही था। गालिब ने एक जगह एक ऐसे समाज की और

इशारा किया है, जिसमें सब कुछ बिकता है। यहाँ तक कि दिल और जान भी। वे कहते है-

तुम इस शहर हो तो क्या गम है?
उठेंगे, तो बाजार से ले आयेंगे दिलों जा और।

यह संवेदना और भावना से रहित समाज की और गालिब का संकेत है। यह मशीन और तकनीकी की दुनिया है। उत्तर आधुनिकता का दौर है, जिसमें पुरानी बातों और विचारों को किताबी कहकर लोग सुनना भी नहीं चाहते है। कमजोर विचार शक्ति के कारण लोगों का विश्वास डगमगा गया है। डगमगा भी क्यों न जाये? जब गरीबी और भुखमारी निरंतर बढती जा रही हो तब केवल राम का नाम जपने और मूल्यों की बात कर लेने मात्र से ही किसी का काम नहीं चल सकता। जब महगाई अपने चरम सीमा पर खडी हो तब जनता के पास विकल्प ही क्या है? देश में एक तरफ गरीबी बढ रही है तो दूसरी तरफ करोडपति लोंगों की संख्या भी निरंतर बढ रही है। सरकार के योजना आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि २६.२० गाँव मे तथा ३३.३३ पैसा शहर में पाने वाला आदमी गरीब नहीं है। वह भी उस देश में जहाँ प्याज ३० रु टमाटर ६० रु. दाल ८० रु.,चीनी ४० रु., तथा चावल ३० रु. किलो बिक रहा हो। यह सरकार की अपनी संवेदनहीनता है। शहर और गाँव की खुशहाली का बयान सरकारी आकडों और फाइलों में तो है, किन्तु वास्तविक स्थिति ठीक इसके विपरीत है। तभी तो अदम गोंडवी को कहना पडता है -

तुम्हारी फाईलों मे गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आकडे झूठे हैं ये दावा किताबी है

गरीबी और भूखमरी के महासागर में सम्पन्नता का टापू बना लेने से कुछ भी नहीं हो सकता है।

आज का आदमी बहुत ही बैचैन और अशांत है। उसकी महत्वकांक्षा बहुत बडी है। वह अचानक सब कुछ पा लेने को बेताब है। इस हंतु वह उचित और अनुचित मार्ग की तनिक भी चिंता नहीं करता। किसी को धोखा देकर, किसी की हत्या करके भी अगर पैसे की प्राप्ति करनी हो तो भी उसे संकोच नहीं। उत्तराखंड की त्रासदी बडी त्रासदी थी। मरने वालों की संख्या हजारों में नहीं लाखों में पहुँच गयी। इस त्रासदी ने मानव जीवन की क्षणभंगुरता का गंभीर एहसास करा दिया । ऐसा त्रासद स्थिति में भी देश के नेता राजनीति की रोटी सकने में लगे हुए थे। यह संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है। आदमी के सोच और विचार का बौनापन है। आखिर इन्सान को हो क्या गया है? स्वार्थ ने आदमी को कितना अँधा बना दिया है। यह विचारों पर मंडराते खतरे का दौर है, क्योंकि इंसान की संवेदना भी दिखावटी और बनावटी हो गयी है। तभी तो हरिवंश राय बच्चन ने ऐसी संवेदना को खुली चुनौती दी है

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी?

जब आदमी की संवेदना झूठी और बनावटी लगने लगे तथा कृतज्ञता एक बोझ बन जाये तब इंसनियत पर सपाल का उठना लाजमी है।

नारी सशक्तिकरण के इस दौर में सबसे ज्यादा शोषित और अशक्त नारी ही है। पुरुष प्रधान यह समाज आज भी बेटे और बेटी के भेद वाली अपनी प्राचीन मानसिकता से अपने को मुक्त नहीं कर पा रही है है। जिसका दुष्परिणाम घटती लिंगानुपात के रूप में पंजाब, दिल्ली, हरियाण आदि राज्यों में देखने को मिल रहा है। लिंगानुपत का यह घटता स्तर एक प्रकार से क्षीण होती सम्वेदना का भी स्तर है। आज के सभ्य समाज की सभ्यता पर यह काला धब्बा है। दिल्ली सभ्यता की नगरी है। यहाँ बडे-बडे राजनीतिज्ञ, नौकरशाह, धनकुबेर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री सब रहते है, किन्तु गत दिनों स्त्रियों पर हुए अत्याचार ने इस सभ्य नगरी की सभ्यता की हवा खोल दी है। सरकार की नांक के नीचे ही सब कुछ घटित होता रहा और सरकार मूक दर्शक बनकर देखती रही । अखिर हमारी सभ्यता किस प्रकार की है सब कुछ घटित होता रहा और सरकार मूक दर्शक बनकर देखती रही आपनी सभ्यता की नए सिरे से पडताल करनी होगी। नए सिरे से उस पर विचार करना होगा। अज्ञेयजी की एक कविता में आता हैं-

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी नहीं आया
फिर काहाँ सीखा डसना ?
विष काहाँ पाया ?

आज का दौर झूठ के दिग्विजय का दौर है सभी झुठ बोल रहे है। नेता नौकरशाह, कानूनविद, शिक्षाविद, चिकित्सक सभी इस झूठ के सरपट दौड में शामिल हैं। बहुत पहले भारतेंदु ने विकास के घुडदौड की बात कही थी, जिसमे दुनिया का छोटा से छोटा राष्ट्र भी शामिल है, लेकिन आज के दौर में ऐसा लगता है कि झूठ फरेब बेईमानी की घुडदौड हो रही हो और छोटे से लेकर बडे सब उसमे शामिल हों। विकास तो हो रहा है । देश का नहीं व्यक्ति का, के स्वार्थ का, उसके लोभ और लालच का, उसके अहंकार का। आचार्य पंडीत हजारी प्रसाद व्दिवेदी, ने कहा है कि सफलता और चरितार्थता में अंतर है। आज का आदमी धन संग्रह करके, अपनी योग्यता और अपनी प्रतिभा से किसी पद को प्राप्त करके सफल तो हो जा रहा है, किन्तु अपने को चारितार्थ नहीं कर पा रहा है। चरितार्थ वह तभी कर सकता है जब उसकी मनुष्यता का दायरा बडा हो, संवेदना और सहानुभूति के धरातल पर वह दूसरे के सुख और दु:ख को समझ सकता हो। गौतम बुध्द ने कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह दूसरे के सुख

और दु:ख को सहानुभूति के स्तर पर देखता है। यह आत्मानिर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है।

भारत में इस समय सर्वाधिक युवा है। युवा का ठीक विपरीत वायु होता है। जैसे वायु की गति मौसम को बदल देती है ठीक वैसे ही युवा शक्ति राष्ट्र को बदल देती है। विवेकानंद को युवा शक्ति पर बहुत भरोसा था। वे युवा शक्ति को राष्ट्र के विकास का मूल मानते थे। वह बडा कार्य अपनी प्रबल उर्जा और क्षमता के बल पर संपन्न कर सकता है, किंन्तु आज की युवा शक्ति पर भरोसा से ज्यादा संदेह खडा हो गया है। यह युवा वर्ग सफलता किसी कीमत पर को आदर्श मानकर चलता है। उसकी दृष्टि सीधे साध्य पर केंद्रित है, क्योंकि उसे भय है कि साधन की चिंता करने पर हो सकता है कि साध्य उससे दूर हो जाए। जिस साधन और साध्य की पवित्रता की बात महात्मा गाँधी किया करते थे आज का युवा उससे भटका हुआ लगता है। आज का युवा एकमात्र न केवल लक्ष्य पर अपनी दृष्टि को केंद्रित रखता है वरना उसे जल्दी पा लेना चाहता है। इस जल्दबाजी में वह एक ऐसे दलदल में भी फंसता है, जिसमे से निकल पाना उसके लिए आसान नहीं होता। यह दलदल कर्ज का भी हो सकता है लोभ का, लालच का, अमानवीयता किसी का भी हो सकता है। वह जीवन की एक ऐसी लडाई लड रहा है, जिससे न तो लड सकता है और न ही भाग सकता है। आर चेतन क्रांति की एक कविता में आता है-

हर जगह हर समय युध्द चल रहा था
हम लडना तो नहीं चाहते थे
लेकिन भागना भी हमारे वश में नहीं था

वर्तमान दौर उत्तर आधुनिकता का है, जिसमे सबके अंत की घोषणा की जा चुकी है। इश्वर, कला, साहित्य, लेखक, आलोचक, सबका अंत हो चुका है। ऐसे मे आदमी निर्विकल्प है कि वह कहाँ और किस पर भरोसा करे? विश्वास का एक बहुत बडा संकट खडा हो गया है। आदमी का आदमी पर से भरोसा उठ गया है। अपने सहवर्ती किसी भी व्यक्ति को वह शक और संदेह की निगाह से देखता है। कहने को तो सबके साथ हैं। लेकिन हकीकता में कोई किसी के साथ नहीं है। बच्चन कहते हैं कि-

क्यों न हम यह मान ले
चल रहे ऐसी डगर पर
हर पथिक जिस पर अकेला

आज आदमी एक में भी तनहा है और सौ की भीड में भी अकेला है। न कोई किसी को अपना दु:ख बाँट सकता है और न ही किसी के दु:ख में शामिल हो रहा है। यह इस सभ्य समय और समाज की एक बहुत बडी विडम्बना है।

आज की शिक्षा व्यवस्था भी अपने को अमानवीयता और संवेदनहीनता से पृथक नहीं कर पा रही है। शिक्षा का जैसा व्यवसायीकरण और बाजारीकरण आज देखने को मिल रहा है वैसा पहले नहीं था। जिस शिक्षा को डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म से जोडा था वही शिक्षा आज बाजार की वस्तु बन गयी है। गुंडे अपराधी नेता नौकरशाही बडे बडे माहाविद्यालय और विश्वविद्यालय खोल रहें है। यहाँ पर किसी भी उपधि को उसका मूल्य देकर खरीदा जा सकता है। कहने को तो हम तकनीकी प्रधान शिक्षा को प्राप्त कर रहे है, किन्तु यह तकनिकी प्रधान शिक्षा आदमी की और भी विवेकहीन और मूल्यहीन बना रही है। इस तकनिकी शिक्षा के दौर में तकनिकी ही प्रधान हो गयी है और शिक्षा गौण। अत: शिक्षा का जो मूल स्वरूप सीखने की वृति से जुडा था उसका क्रमश: लोप होता जा रहा है। आज का शिक्षक पढने की वृत्ति से दूर होता जा रहा है। राधाकृष्णन ने कहा था कि एक अच्छा शिक्षक वह है,जो जीवन पर्यंत विद्यार्थी बना रहता है। आज का शिक्षक शिक्षा के इस मूल्य को विस्मृत कर चुका है। एक बार शिक्षक बन जाने के बाद वह येन केन प्रकारेण धनार्जन में लगा रहता है। राधाकृष्णन ने कहा था की एक अच्छा शिक्षक वह है, जो जीवन पर्यंत बाद वह येन केन प्रकारेण धनार्जन में लगा रहता है। शिक्षा तो किसी भी राष्ट्र के विकास की धुरी। वह कमजोर आदमी को ताकतवर बनाती है, ताकतवर केा संवेदनशील बनाती है, बनाती है, संवेदनशीन को सक्रिय बनती है तथा सक्रिय को मानवीय बनाती है। वही शिक्षा आज खुद बहुत बडे संकट के बीच से गुजर रही है। आज की शिक्षा - व्यवस्था और आज का शिक्षक एक ऐसी स्थिति में पुहुँच गए है, जिस पर भरोसा से ज्यादा संदेह किया जा रहा है। राग दरबारी उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था रास्ते में एक ऐसी कुतिया है, जिसको कोई भी चार लात लगा देती है।

गिरती हुई मनुष्यता ने लोकतंत्र के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ न्याय पर से लोगों का भरोसा ही उठा दिया है। न्यायलय पर अब आम जनता भरोसा नहीं कर रही है। उसे मालूम है कि समाज के बडे लोग धन के बल पर न्याय को खरीद ले रहे हैं। एक प्रकार से आम जनता की कोई सुनवाई ही नहीं। इस कारण यह जनता थककर सो गयी है। श्रीकांत वर्मा की एक कविता में आता है-

न्यायलय बंद हो चुके है, आर्जियाँ हवा में उड रहीं है
कोई अपील नहीं, कोई कानून नहीं
कुहरे में डूब गयीं है प्रत्याशयें, धुल में पडे है कुछ शब्द
जनता थककर सो गयी है।

यह वही जनता है, जो निर्विकल्प है। इसलिए वह थककर सो गयी है।

मानवीय संकट के इय दौर में चिकित्सा जगत भी संवेदनहीनता की पाराकाष्ठा पर खडा है । प्रेमचंद की मन्त्र कहानी में जिस डॉ. चड्ढा की संवेदनहीनता की बात आती है, जो मानवीय कर्तव्य निभा नहीं पाते आज हर गली, हर मुहल्ले और हर शहर में ऐसे चिकित्सक मिल जायेंगे, जो मानवीय कर्तव्य से कोसो दूर मरीज को धन कमाने का एक जरिया मानते हैं। उनके बडे बडे शापिंग माल की तरह से बन हुए नर्शिग होम में मरीजों का इलाज कम शोषण जादा होता है। इलाज के नाम पर उनसे मोटा धन कमाया जाता है। भारत की एक बडी आबादी अभी कम शोषण ज्यादा होता है। इलाज के नाम पर उनसे मोटा धन कमाया जाता है। भारत की एक बडी आबादी अभी भी गांवों में बसती है, जाहाँ रोग महामारी का रूप धारण कर लेते है, लेकिन दिल्ली में जिस प्रकार डॉक्टरों द्वारा एक वर्ष की अनवार्य ग्राम पोस्टींग के विरूध्द हडताल किया गया वह किसी भी रूप में मानवीय नहीं कहा जा सकता उाक्टारों की संवेदनहीनता बराबर समाचार पात्रों में समाचार का विषय बनती रहती है। महिला ने सडक पर ही बच्चे को जन्म दिया किंतु सरकार से वेतन के नाम पर मोटी तनख्वाह लेने वाले डाक्टर उसे देखते भी नहीं। आज अधिकांश सरकारी डाक्टरों की अपनी निजी प्रैक्टिस है, जहाँ पर वे मरीजों से इलाज के नाम पर मोटा धन कमाते हैं। जिस कार्य हेतु वे सरकार से पैसा पाते हैं उस आम आदमी के दु:ख और दर्द का निवारण उनका उद्देश्य नहीं होता। धर्म सेवा से एकदम दूर मानवता को ताक पर रखकर जैसे-तैसे पैसा कमाना उनका चरम व परम ध्येय होता है।

पत्रकारिता लोकतंत्र का एक प्रधान स्तभ्भ है, जो लोक की पीडी, दु:ख व दर्द को सामने लाने को आपना प्रमुख धर्म मानती है। लोक और तंत्र के बीच वाहक का कार्य करती है पत्रकारिता लोक को तंत्र से जोड देने का एक महत्वपूर्ण मिशन है उसका, किंतु आज का पत्रकार अर्थ प्राप्ती को आपना प्रधान मिशन मानकर चल रहा है। वह उन खबरों पर ज्यादा जोर देता है, जिससे उसकी टी.आर.पी बढती है और जो समाज में सनसनी पैदा करती है वह बडी-बडी गाडियों पर बैठकर चलता है और अपने समाचार पत्र में उन कंपनियों के विज्ञापन को प्रमुख वरीयता से प्रकाशित करता है, जिनसे विज्ञापन के नाम पर मोटा धन प्राप्त करता है। जिन मूल्यों की बात उसके द्वारा की जाती है वह स्वंय अपने को उससे पृथक मानकर चलता है। एक तरह से वह अपने को स्वयंसिध्द मान बैठा है। पात्रकरिता के क्षेत्र में अपने आचरण और कर्म से जिन मूल्यों और आदर्शो की स्थापना भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र बाबूराव विष्णुराव पराडकर, गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रेमचंद तथा दशरथ प्रसाद द्विवेदी आदि ने की थी कम से कम उसका तो आज लोप हो ही गया है। ये ऐसे लोग हैं, ये ऐसे लोग है, जिन्होंने पत्रकारिता को अपना मिशन माना था और उस मिशन के पीछे अपना सर्वस्व होम कर दिया था। मुक्तिबोध की एक कविता है अंधेरे में इस कविता में वे शहर के कई प्रतिष्ठित पत्रकारों को रात के अंधेरे में उस प्रोशेसन में शमिल देखते है, शहर का ही कुख्यात अपराधी डोमाजी उस्ताद भी शामिल है-

विचित्र प्रोशेसन,
लगता है उनमे कई प्रतिष्ठित प्रत्रकार
इसी नगर के
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद ।

आज का पत्रकार भी ऐसे ही जुलूस का हिस्सा बनता जा रहा है। यह चिंता का विषय है।

आज देश की आबादी जितनी तेजी के साथ बढ रही है उससे ज्यादा तेजी के साथ गरीबी बढ रही है। ऐसे गरीब लोगों की कमी नहीं है देश में जिन्हें दो वक्त रोटी भी नसीब नहीं हो पाती। उनका न तो अपना कोई घर है ना ही ठिकाना। लिए स्वतंत्रता, स्वाधीनता, आजादी आदि के सवाल ही मानी व्यर्थ है। तभी तो अदम गोंडवी को कहना पडता है

आजादी का वो जश्न मनायों किस तरह
जो फुटपाथ पर आ गए घर की तलाश में।

संस्कृत में एक उक्ति है कि "बुभुक्षितम किम न करोति पाप" अर्थात भूख व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता तात्पर्य यह है कि वह कोई भी पाप कर सकता है। एक भूख व गरीब आदमी जब अपने साथ अपनी पत्नी व बच्चे को रोटी के लिए बिलखते हुए देखता है तो उसके मन में पाप घर कर जाता है और अपनी आत्मा की गिरवी रखकर वह हत्या जैसे जघन्य अपराध तक कर डालता है। अक्सर समाचार पात्रों में यह छपता रहता है कि मात्र पॉच सौ रु देकर किसी की हत्या करा दी गयी यहाँ तक कि विस्फोटक पदार्थ शरीर में बांधकर मरने तक के लिए ये लोग तैयार हो जाते हैं। ऐसा गरीब आदमी गरीब के आगे कर्तव्य - अकर्तव्य के बीच भेद नहीं कर पाता प्रेमचंद की एक कहानी है कफन इसमें घीसू माधव कफन के पैसे को शराब और स्वादिष्ट भोजन पर खर्च कर देते हैं। यह एक प्रकार से गरीबी की पराकाष्ठा है, जो मानवता को भी समाप्त कर देती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब सब पथभ्रष्ट हो गयें हों जब मनुष्यता एकदम तार तार हो गयी हो तो ऐसे में साहित्य या कला का अपना दायित्व क्या है? क्या उसे चुपचाप मूक दर्शक बनकर देखते रहना चाहिए अथवा इसकी रक्षा के निमित आगे आना चाहिए? एक दृष्टि से यह चुनौति का समय है। जब मूल्य संपूर्णत: त्राहि माम त्राहि

कर रहें हो तब साहित्यकार या रचनाकार का दायित्य और भी बहूत तथा गंभीर हो जाता है, क्योंकि ऐसे समय में उसका काम दोहरा हो जाता है। उसे केवल रास्ता दिखाना ही नहीं है वरन प्रेमचंद के शब्दों में मशाल दिखाते हुए आगे आगे चलते भी रहना है। उसे मनुष्य की आत्मा को तेजोद्दीप्त बनाना है और असके ऱ्हदय को परदुखकातर तथा संवेदनशील भी बनाना है। ऐसा नहीं कि साहित्य अपना यह धर्म निभा नहीं रहा है। साहित्य अपना धर्म बख्ूबी निभा रहा है तभी तो राजेश जोशी कहते है-

"मै इसलिए कविता रचता हूँ कि बगावत कि मेरी आवाज जड ऱ्हदयों के भीतर तक चोट कर जाए और कहीं से तो एक चिंगारी उठे।"

साहित्य अपना धर्म निभा रहा है, किन्तु मनष्य की जो सामाजिक संरचना है उसी में मानो कुछ ऐसा दोष रह गया है जो उसे अच्छी बात को सुनने, समझने तथा मानने से रोकती है। इसी को लक्ष कर आचार्य पंडित हजारी प्रसाद व्दिवेदी कहते है कि आज की सबसे बडी समस्या यह नहीं है कि है अच्छी बात कैसे कही जाये बल्कि यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाये तात्पर्य यह है कि आज के साहित्यकार को मनुष्य को अच्छी बात को सुनने तथा समझने के लिए तैयार करना है। यह कार्य बडा गुरूतर है, क्योंकि आज का आदमी नैतिकता, मुल्य व आदर्श की बातों को सुनना भी नहीं चाहता। तो क्या उसे छोड दिया जाये? नहीं। रचनकार को अपना धर्म निभाना है। अपना प्रयत्न जारी रखना है जैसा कि प्रख्यात साहित्यकार अरूण कमल कहते है ऱ्

मुक्ति न भी मिले तो बचा रहे मुक्ति का स्वप्न
जीवन न भी बदले तो बना रहे बदलने का यत्र

आज का दौर कई प्रकार के संकटो और झंझावातो का है, जिसके केंद्र में मनुष्य है। वह दुहरी लडाई लड रहा है एक तो अस्मिता की तथा दूसरी अस्तित्व की यह भी सत्य है कि आज अस्तित्व की अडाई अस्मिता की लडाई पर भारी है। आज की अधिकांश आबादी अस्तित्व की लडाई लड रही है। इस लडाई में साहित्यकार को भी शामिल होना होगा। उसे समाज के धनी और अगुवा लोगों के ऱ्हदय में संवेदना को जगाना होगा और यह बताना होगा कि उनका यह जीवन केवल अपने लिए नहीं है और न ही प्रभु का अंश है वरन उन सबके लिए है जिनका कि कोई जीवन ही नहीं है। गोपाल दास नीरज कहते है-

"जिवन मरी और तुम्हारी नहीं
उन सबकी आवाज है जिनकी कि कोई आवाज ही नहीं है।"

यह कार्य आसान नहीं है मनुष्य को असके आत्मा से उपर उठाना क्योंकि आज का आदमी यह मान बैठा है उसका जीवन सिर्फ और सिर्फ उसके लिए है लेकिन एक रचनाकर को तो अपना धर्म निभाना ही होगा भले ही वह एक स्वप्न ही क्यों न हो? जैसा कि वेणु गोपाल की इस कविता में आता है-

ना हो कुछ भी सिर्फ सपना हो तो भी हो सकती है शुरूआत
और यह एक शुरूआत ही तो है कि वहा एक सपना है।